ध्यान-विधि

शांत होना जीवन-दृष्टि है

जीवन में छोटे-बड़े दुख के कारण कभी-कभी मन अशांत, निराश और बेचैन बन जाता है। तो संसार में ही रह कर मन सदा शांत, प्रसन्न और उत्साही कैसे रखें?

नियति की जो बात हम कर रहे हैं, उसे अगर ठीक से समझ लें, तो मन शांत हो जाएगा। और कोई भी उपाय मन को शांत करने का नहीं है। और सब उपाय ऊपरी-ऊपरी हैं, उनसे थोड़ी-बहुत राहत मिल सकती है, लेकिन मन शांत नहीं हो सकता।

लेकिन नियति की बात थोड़ी कठिन है, समझ में थोड़ी मुश्किल से पड़ती है। मन अशांत होता है। नियति का विचार कहेगा, उस अशांति को स्वीकार कर लें। उसके विपरीत शांत होने की कोशिश मत करें। मन उदास है। नियति का विचार कहेगा, उदासी को स्वीकार कर लें, प्रफुल्लित होने की चेष्टा न करें। क्योंकि असली अशांति अशांति के कारण नहीं, अशांति को दूर हटाने के विचार से पैदा होती है।

असली उदासी उदासी से नहीं, कैसे मैं प्रफुल्लित हो जाऊं, इस धारणा से, इस विचार से, इस आकांक्षा से पैदा होती है। उदासी को स्वीकार कर लें, और आप पाएंगे शीघ्र ही कि उदासी विलीन हो गई है। उसकी स्वीकृति में ही उसका अंत है।

कैसे दुखी न हों, यह न पूछें। दुखी हैं, दुख को स्वीकार कर लें। वह भाग्य। वह नियति। वह है। उससे लड़ें मत। उससे सब लड़ाई छोड़ दें। उसके पार जाने की आकांक्षा भी छोड़ दें। उससे विपरीत की मांग भी छोड़ दें। उसे स्वीकार कर लें कि यह मेरी नियति, यह मेरा भाग्य। मैं दुखी हूं, बात यहां पूरी हो गई। दुख से राजी हो जाएं और फिर देखें कि दुख कैसे टिक सकता है। अशांति को स्वीकार कर लें और आप शांत हो जाएंगे। हमारी अशांति अशांति नहीं है। हमारी अशांति शांति की चाह से पैदा होती है। इसलिए जो लोग शांति के लिए बहुत आकांक्षी हो जाते हैं, उनसे ज्यादा अशांत कोई भी नहीं होता।

मैं रोज न मालूम कितने लोगों को इस संबंध में इस उलझन में पड़ा हुआ देखता हूं। जिस दिन से आपको खयाल हो जाता है कि शांत कैसे हों, उस दिन से आपकी अशांति बढ़ेगी। क्योंकि अशांति तो है ही, अब एक नई अशांति भी शुरू हो गई कि शांत कैसे हों!

और अशांत आदमी कैसे शांत हो सकता है? और अशांत आदमी पूजा भी करेगा, तो उसकी अशांति ही होगी उसकी पूजा में प्रकट। और अशांत आदमी ध्यान भी करेगा, तो उसका ध्यान भी उसकी अशांति से ही निकलेगा। अशांत आदमी मंदिर भी जाएगा, तो अपनी बेचैनी को साथ ले जाएगा। अशांत गीता भी पढ़ेगा, तो करेगा क्या? अशांति से अशांति ही निकल सकती है। इसलिए आप कुछ भी करें, करेगा कौन? वह जो अशांत है, वही कुछ करेगा।

ध्यान रहे, एक बहुत मनोवैज्ञानिक, आधारभूत नियम, कि अगर आप अशांत हैं, तो आप जो भी करेंगे, उससे अशांति बढ़ेगी। कौन करेगा? अशांत आदमी कुछ करेगा। वह और अशांति को दुगुनी कर लेगा, तीन गुनी कर लेगा।

ऐसा समझें कि एक लोभी आदमी है, वह लोभ छोड़ने की कोशिश कर रहा है। वह करेगा क्या? यह लोभ छोड़ने की कोशिश भी लोभ से ही निकलेगी। वह आदमी लोभी है। तो अगर कोई उसको विश्वास दिला दे कि अगर तू इतना दान करता है, तो स्वर्ग में तुझे भगवान के मकान के बिलकुल पास मकान मिल जाएगा। अगर यह पक्का हो जाए, तो वह दान कर सकता है। मगर यह दान लोभ से निकलेगा। स्वर्ग में जगत बिलकुल निश्चित हो जाए, यह लोभ! तो दान कर सकता है वह। मगर यह दान लोभ के विपरीत नहीं है, लोभ का हिस्सा है।

लोभी आदमी क्या करेगा? जो भी करेगा, वह लोभ के कारण ही कर सकता है। क्रोधी आदमी क्या करेगा? वह जो भी करेगा, क्रोध के कारण कर सकता है। आप जो हैं, उसके रहते आप जो भी करेंगे, वह आपसे ही निकलेगा। और अगर नीम से पत्ता निकलेगा, तो वह कड़वा होगा। और आपसे जो पत्ता निकलेगा, वह आपका ही स्वाद वाला होगा।

नियति का विचार यह कहता है कि आप कुछ करें मत। आप कर नहीं सकते कुछ, आप सिर्फ राजी हो जाएं। इसका प्रयोग करके देखें। अशांति आई है बहुत बार और आपने शांत होने की कोशिश की है और अब तक हो नहीं पाए हैं। इस दूसरे प्रयोग को करके देखें। अशांति आए, स्वीकार कर लें कि मैं अशांत हूं। मैं आदमी ऐसा हूं कि मुझे अशांति मिलेगी। मैंने ऐसा कर्म

किया होगा कि मुझे अशांति मिल रही है। मेरी नियति में अशांति का ही पात्र हूं मैं, इसे स्वीकार कर लें। इस अशांति से रत्ती-मात्र संघर्ष न करें।

क्या होगा? जैसे ही आप स्वीकार करते हैं, अशांति तिरोहित होनी शुरू हो जाती है। क्योंकि स्वीकार का भाव ही उसकी मृत्यु बन जाता है। जिस चीज को हम स्वीकार कर लेते हैं, उसके हम पार हो जाते हैं। अशांत हैं, अशांति को स्वीकार कर लें, लड़ें मत। फिर देखें, क्या होता है। स्वीकृति क्रांतिकारी तत्व है। और जिस बात को हम स्वीकार कर लें, लड़ें मत। फिर देखें, क्या होता है। स्वीकृति क्रांतिकारी तत्व है। और जिस बात को हम स्वीकार कर लेते हैं, उससे छुटकारा उसी क्षण शुरू हो जाता है।

हमारा उपद्रव क्या है? सुख को हम पकड़ते हैं, दुख को हम पकड़ते नहीं। दुख से हम बचना चाहते हैं। सुख कहीं छूट न जाए, इस कोशिश में होते हैं। और हमें पता नहीं कि सुख और दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तो जब हम सुख को पकड़ते हैं, तब हमने दुख को पकड़ लिया, वह उसी का छिपा हुआ पहलू है। तो हम उलटा काम कर रहे हैं; सुख पकड़ना चाहते हैं, दुख को हटाना चाहते हैं। यह नहीं होगा। या तो दोनों को छोड़ दें, या दोनों के लिए राजी हो जाएं। दोनों हालत में आपके जीवन में क्रांति हो जाएगी।

लेकिन सुख-दुख तो हमारी समझ में आ जाते हैं। जब कोई आ जाता है, कहता है शांति-अशांति, तो लगता है यह कोई दूसरी बात कर रहा है। बात वही है। वही के वही सिक्के हैं। नाम बदल गए हैं।

आप शांति चाहते हैं। आप शांति चाहते हैं, इसलिए आपको अशांत होना पड़ेगा। क्योंकि वह दूसरा हिस्सा कौन स्वीकार करेगा? आप शांति पा लेंगे, तो अशांति कौन पाएगा? आधा हिस्सा कहां जाएगा? और सिक्के के दो पहलू अलग नहीं किए जा सकते।

आप अशांति को भी राजी हो जाएं, अगर शांति चाहते हैं। तो दोनों को राजी हो जाएं। दोनों के लिए राजी होने में ही क्रांति घट जाती है। क्योंकि साधारणतया मन दोनों के लिए राजी नहीं होता, एक के लिए राजी होता है। मन की तरकीब यह है कि आधे को पकड़ो, आधे को छोड़ो। यही मन का द्वंद्व है, यही उसका कष्ट है। जब आप दोनों के लिए राजी हो गए, आप मन के पार हो गए। या दोनों को छोड़ दें, या दोनों को पकड़ लें, दोनों एक ही बात है।

इसलिए जगत में दो उपाय हैं, दो विधियां हैं। परम अनुभूति के पाने की दो विधियां हैं। एक, दोनों को छोड़ दें—यह संन्यासी का मार्ग है। दोनों को पकड़ लें—यह गृहस्थ का मार्ग है। दोनों का परिणाम एक है। क्योंकि मन की तरकीब है, एक को पकड़ना और एक को छोड़ना। दोनों को छोड़ें, तो भी मन छूट जाता है। दोनों को पकड़ लें, तो भी मन छूट जाता है। क्योंकि मन आधे के साथ जी सकता है।

ये दो उपाय हैं। या तो दोनों छोड़ दें—सुख भी, दुख भी; शांति भी, अशांति भी—फिर आपका कोई अशांत न कर सकेगा। या दोनों पकड़ लें। दोनों पकड़ना 'सहज-योग' है।

इन मित्र ने यही पूछा है कि घर में, संसार में रहते हुए कैसे शांति पाऊं? पहली बात, शांति पाने की कोशिश मत करें, अशांति को स्वीकार कर लें। आप शांत हो जाएंगे। फिर इस दुनिया में आपको कोई अशांत नहीं कर सकता। अगर मैं अशांति के लिए राजी हूं, तो मुझे कौन अशांत कर सकेगा? अगर मैं गाली के लिए राजी हूं, तो कौन मेरा अपमान कर सकता है? मैं गाली के लिए राजी नहीं हूं, इसलिए कोई मेरा अपमान कर सकता है। मैं अशांति के लिए राजी नहीं हूं, इसलिए कोई भी अशांत कर सकता है। और जितना हम शांत होने की कोशिश करते हैं, उतने हम संवेदनशील हो जाते हैं।

अगर हम ठीक से मन की प्रक्रिया को समझ लें, तो मन की प्रक्रिया को समझकर जीवन बदला जाता है। प्रक्रिया यह है कि मन हमेशा चीजों को दो में तोड़ लेता है—मान-अपमान, सुख-दुख, शांति-अशांति, संसार-मोक्ष—दो में तोड़ लेता है। और कहता है, एक नहीं चाहिए, अरुचिकर है; और एक चाहिए, रुचिकर है। बस, यह मन का खेल है।

इस मन से बचने के दो उपाय हैं। या तो दोनों के लिए राजी हो जाएं, मन जाएगा। या दोनों को छोड़ दें, तो भी मन मर जाएगा। जो आपके लिए अनुकूल मालूम पड़े, वैसा कर लें। अन्यथा आपके शांत होने का फिर कोई उपाय नहीं है। जब तक आप शांत होना चाहते हैं, तब तक शांत न हो सकेंगे। जब तक आप सुखी होना चाहते हैं, दुख आपका भाग्य होगा। और जब तक मोक्ष के लिए पागल हैं, संसार आपकी परिक्रमा होगी। दोनों के लिए राजी हो जाएं। मांग ही छोड़ दें। कह दें, जो होता है, मैं राजी हूं।

इसका थोड़ा प्रयोग करके देखें, चौबीस घंटे, ज्यादा नहीं। लड़ने का प्रयोग तो आप हजारों जन्मों से कर रहे हैं। एक चौबीस घंटे तय कर लें कि आज सुबह छह बजे से कल सुबह छह बजे तक, जो भी होगा, उसको मैं स्वीकार कर लूंगा। जरा भी विरोध, द्वंद्व खड़ा नहीं करूंगा।

देखें, चौबीस घंटे में आपकी जिंदगी में एक नई हवा का प्रवेश हो जाएगा। जैसे कोई झरोखा अचानक खुल गया और ताजी हवा आपकी जिंदगी में आनी शुरू हो गई। फिर ये चौबीस घंटे कभी खत्म न होंगे। एक दफा इसका अनुभव हो जाए, फिर आप इसमें गहरे उतरने लगेंगे।

कोई विधि नहीं है शांत होने की, शांत होना जीवन-दृष्टि है। कोई मेथड नहीं होता कि राम-राम, राम-राम जप लिया और शांत हो गए। नहीं होंगे आप शांत। राम-राम की आपकी अशांति ही होगी। वह भी आप अशांत मन से ही जपते रहेंगे। वह भी आपकी बेचैनी और बुखार का सबूत होगा, और कुछ भी नहीं।

शांत हो जाएं। कैसे? अशांति को स्वीकार लें। दुख को स्वीकार कर लें। मृत्यु को स्वीकार कर लें, फिर आपकी कोई मृत्यु नहीं है। जिस हम स्वीकार कर लेते हैं, उसके हम पार हो जाते हैं।

— ***ओशो***
ध्यान-विज्ञान

स्वामी ओम् प्रकाश सरस्वती

तुम्हें चुन लिया है

सितंबर माह, 1971 को माउंट आबू में, ध्यान साधना शिविर आयोजित हुआ था। इस शिविर को स्वयं ओशो संचालित कर रहे थे। कोटा से इस शिविर में भाग लेने पहुंचे थे स्वामी ओम् प्रकाश सरस्वती।

अपने संन्यास की घटना का जिक्र करते हुए उन्होंने हमें बताया था, “इस शिविर में ध्यान प्रयोगों में उतरते हुए अनेक अनुभव हो रहे थे। ओशो के प्रति आस्था बढ़ती जा रही थी। उनके निकट से दर्शन की अभिलाषा में अनजाने ही मैं उस लाइन में जाकर खड़ा हो गया जो संन्यास दीक्षा लेने वालों की थी।”

धीरे-धीरे लोग आगे बढ़ रहे थे, जब मेरी बारी आई तो मैंने ओशो के चरणों में सिर नवाया।

ओशो ने पूछा – “गैरिक या श्वेत?”

सहज ही मेरे मुंह से निकला – “भगवान श्री, श्वेत।”

(उल्लेखनीय है कि उन दिनों संन्यास-दीक्षा के दो रूप थे–श्वेत वस्त्रों में अथवा गैरिक वस्त्रों में)

फिर ओशो ने मेरा नाम पूछा। मैंने बताया – ओम् प्रकाश।

मीठे स्वर में ओशो बोले, ‘नाम सुंदर है और अपने आप में पूर्ण है’, और एक कागज पर सुंदर अक्षरों से लिखा ‘साधु ओम् प्रकाश सरस्वती’। उसे देते हुए मुझे निर्देश दिया ‘कोई एक ध्यान चुन लो और उसे कम से कम तीन महीने तक लगातार करो।’

‘कृतज्ञता से मैं पुनः उनके चरणों में झुका। उस एक क्षण में क्रांति हो गयी। मैं वही नहीं रहा, जो अब तक था। मैं बदल चुका था।’

‘घर लौटा तो मेरी बदली हुई दिनचर्या से सब चौंके। ओशो की पुस्तकें, सक्रिय ध्यान विधि, श्वेत वस्त्र, साधनापूर्ण जीवन, ओशो की याद... घर में थोड़ा-बहुत कोहराम मचा। धीरे-धीरे घर और बाहर सभी ने मेरे नये रूपांतरण को स्वीकार कर लिया।’

‘आगे उन्होंने बताया था कि मैं नौकरी से ऐच्छिक अवकाश ले ही चुका था। और फिर पत्नी के देहावसान के पश्चात् 1976 में मैं पूना कम्यून में स्थायी रूप से रहने के लिए पूरी तैयारी से पहुंचा।’

ओशो के प्रातः कालीन प्रवचनों को सुनना बहुत आनंददायक था। उन दिनों ओशो जिन-सूत्र पर बोल रहे थे। मेरे भीतर जो एक मंथन चल रहा था, मैंने उसे लिखकर ओशो के पास भेजा। ‘देह की वृद्धावस्था है। मरने की पूरी तैयारी है। वापसी का भी भय नहीं। एक अड़चन अवश्य सताती है कि उस समय आप गुरु भगवान तो नहीं उपलब्ध होंगे?

ओशो इस प्रश्न पर कहते हैं, “ओम् प्रकाश सरस्वती ने पूछा है। मैं जानता हूं, वे पूरी तरह तैयार होकर आये हैं। वे कुछ भी खोने को तैयार हैं, कुछ भी देने को तैयार हैं और इसी कारण बाधा है। हृदय उनका भक्त का है, ज्ञानी का नहीं है। .... ओम् प्रकाश बुद्धिमान आदमी नहीं, हृदयवान आदमी हैं।

ओम् प्रकाश हृदय केन्द्र के करीब हैं। घटेगी घटना। घटनी ही है। लेकिन तुम्हारी तरफ से कोई तैयारी की जरूरत नहीं है। और न तुम्हारे पास कोई उपाय है कि तुम कुछ कर सको। तड़पो, रोओ, नाचो। नाचो, क्योंकि श्रद्धा है। नाचो, क्योंकि वह आता ही होगा। नाचो, क्योंकि वह आ ही रहा है, रास्ते पर ही है।

नाचो, उसने तुम्हें चुन लिया है।”

रही बात कि – “उस समय आप गुरु भगवान तो नहीं उपलब्ध होंगे।

अगर मुझसे संबंध जुड़ गया है तो मैं सदा उपलब्ध हूं। संबंध जुड़ने की बात है। जिनका नहीं जुड़ा, उन्हें अभी भी उपलब्ध नहीं हूं। वे यहां भी बैठे होंगे। जिनसे नहीं जुड़ाव हुआ, उन्हें अभी भी उपलब्ध नहीं हूं। जिनसे जुड़ गया उन्हें सदा उपलब्ध हूं।

ओम् प्रकाश से जोड़ बन रहा है। तो घबराओ मत। अहोभाव से भरो।

जोड़ बन गया तो यह जोड़ शाश्वत है। यह टूटता नहीं। इसके टूटने का कोई उपाय नहीं है।”

— जिन सूत्र, भाग-2, प्रवचन-26

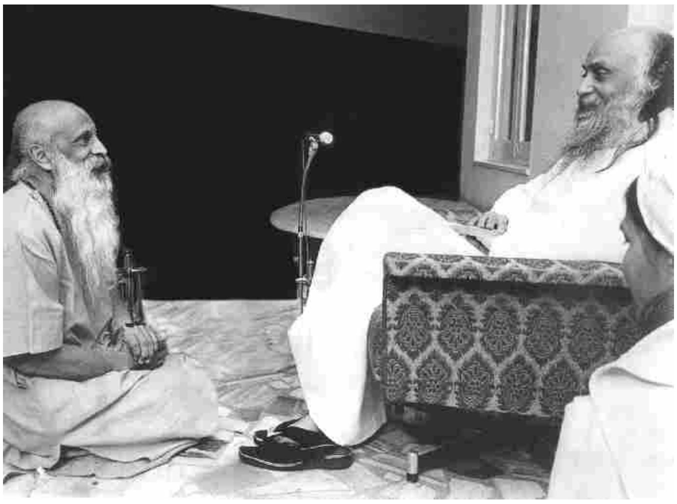

जोड़ बन गया तो यह जोड़ शाश्वत है

‘अपने सद्‌गुरु भगवान से ऐसा सुन मेरा रोआं-रोआं नाचने लगा।’ स्वामी जी आंसू भरी आंखों और गदगद वाणी में बताते थे कि ‘मैं एकदम निर्भार हो गया। भूत, भविष्य जैसे सब मिट गए। सामने था आलोकित पथ। ओशो क्या आए जीवन में, हजारों-हजारों बहारें आ गयीं।’

1978 में पूना कम्यून से ‘ओशो राजयोग ध्यान केन्द्र’ की स्थापना एवं संचालन के लिए आपको दिल्ली भेजा गया। तब से लेकर आज तक केंद्र की भूमिका एक तीर्थ की भांति रही है। 1987 में, मुंबई में ओशो ने एक भेंटवार्ता के दौरान स्वामी जी से कहा कि ‘तुम मेरे लिए एक स्थान बनाओ, मैं वहां जरूर आऊंगा?’ ऐसा स्थान बनाने हेतु स्वामी जी तन-मन-धन से जुट गए। इस भांति सद्‌गुरु के आशीषों व स्वामी जी के प्रयत्नों से ‘ओशोधाम’ अस्तित्व में आया। सुख-सुविधा से भरपूर प्राकृतिक वातावरण में यहां पूरे वर्ष भर ध्यान, उत्सव के कार्यक्रम आयोजित रहते हैं। यहां आकर हज़ारों साधक ध्यान व नवसंन्यास में अवगाहन करते हैं। और रूपांतरित हो रहे हैं। इसके बाद ओशो के कार्य ने और विस्तार लिया। राजधानी के अत्याधुनिक शापिंग माल, असंल प्लाज़ा में ‘ओशो वर्ल्ड गैलेरिया’ का शुभारंभ 2000 में

शापिंग माल, असंल प्लाज़ा में ‘ओशो वर्ल्ड गैलेरिया’ का शुभारंभ 2000 में हुआ। अब बीच बाजार में ओशो साहित्य और ओशो वाणी सर्वसुलभ होने का एक नया आयाम खुला। पुनः यहीं से ‘ओशो वर्ल्ड पत्रिका’ का प्रारंभ हुआ जो देश के कोने-कोने में उपलब्ध है।

ओशो के सद्‌शिष्य स्वामी ओम् प्रकाश सरस्वती एक भक्त और साथ ही कर्मयोगी भी थे। वे कर्ता नहीं थे। कर्म स्वंयमेव हो रहे थे। उनकी एकमात्र पूंजी थी—बेशर्त समर्पण। बाहर और भीतर की समृद्धि में निष्कंप वे आजीवन सहज ध्यान व प्रेमपूर्ण रहे। ‘ओम् प्रकाश हृदय केन्द्र के करीब हैं। घटेगी घटना। घटनी ही है।’ ओशो के सत्यवचन आशीर्वाद स्वरूप निरंतर बरसते रहे। समय परिपक्व हुआ और स्वामी ओम् प्रकाश सरस्वती अपनी चेतना के उस परम शिखर तक जा पहुंचे, जहां चैतन्य का फूल खिलता है। 21 मई 2001 को वे संबोधि को उपलब्ध हुए। 27 मार्च 2003 को आपकी इहलीला पूरी हुई और ओम् प्रकाश अनंत प्रकाश में लीन हो गए।

— मा बोधि शशि

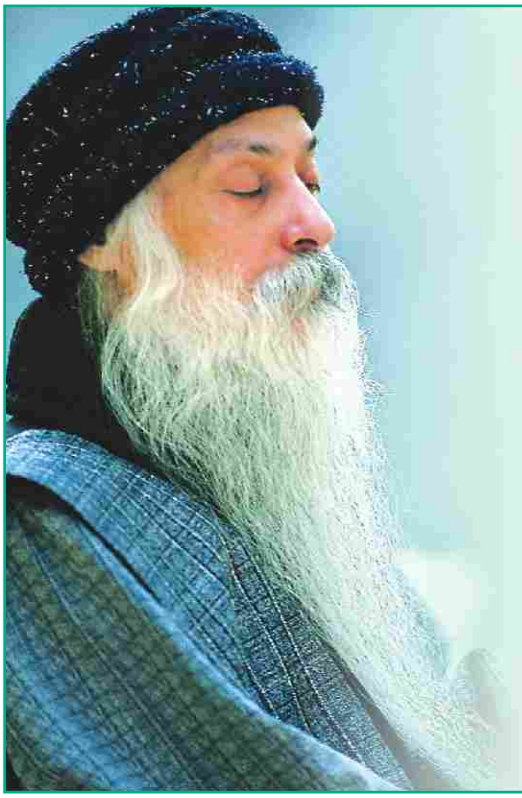

ओशो राजयोग ध्यान केंद्र

बुद्धत्व का तो एक ही सूत्र है कि तुम्हारे प्रत्येक कृत्य में जागरूकता समाविष्ट हो जाए। तुम्हारा प्रत्येक कृत्य होश की गरिमा से भर जाए। तुम कुछ भी बेहोशी में न करो—कुछ भी। जो भी तुम करो, उस करने में होश रहे, बोध रहे कि मैं ऐसा कर रहा हूं। जब बोध रहता है तो गलत अपने आप बंद हो जाता है! जब बोध रहता है तो ठीक अपने आप होता है।

— ओशो

- प्रतिदिन ध्यान
- ओशो साहित्य
- ओशो के प्रवचन *ऑडियो तथा सी.डी.*
- टेप-लाइब्रेरी

अतिरिक्त जानकारी के लिए संपर्क करें

सी-5/44, सफदरजंग डेवलपमेंट एरिया,
नई दिल्ली - 110016
फोनः 26964533, 26862898
E-mail: oshocentre@oshoworld.com